REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 9 | JUNE - 2024

हरविजय महाकाव्य में वर्णित सामाजिक वैभव : एक अध्ययन

डॉ. रेनू शुक्ला
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड,
कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।

सारांश –

साहित्य समाज का दर्पण है प्रत्येक कवि की कृति पर तत्कालीन वातावरण कार्य एवं परिस्थितियां का प्रभाव पड़ता है। भारतीय समाज में आश्रम–धर्म का विधान किया गया है। जीवन के मर्म को हृदयंगम करके ही आश्रम व्यवस्था को विकसित किया गया है। मनुष्य की आयु का समय सौ वर्ष मानते हुए इन सौ वर्षों को चार आश्रमों में समविभक्त किया गया है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। स्त्रियों की स्थिति किसी भी देश की सभ्यता का सच्चा मापदण्ड है। पाश्चात्य देशों के सर्वथा विपरीत भारत में पहले तो स्त्रियों की दशा परम समुन्नत थी। आश्रम व्यवस्था, वर्ष व्यवस्था, आर्शीवाद, अतिथि सत्कार, सदाचार, विवाह, समाज में स्त्री सम्मान आदि का अध्ययन किया गया है। इसलिए किसी काव्य का सामाजिक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉ एवं परंपरागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है।

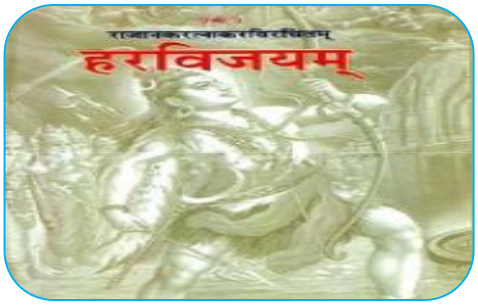

शब्द कुन्ज– चित्रित, सामाजिक, मान्यताएँ, अनुशीलन, समाहित, आख्यान ..... इत्यादि।

प्रस्तावना–

साहित्य समाज का दर्पण है प्रत्येक कवि की कृति पर तत्कालीन वातावरण कार्य एवं परिस्थितियां का प्रभाव पड़ता है। कवि जिस समाज में रहता है उसका शिष्ट एवं निर्मल लोक शास्त्र का ज्ञाता भी होता है। लोकशास्त्र आदि के अनुशीलन से प्राप्त हुई निपुणता के आधार पर ही वह काव्य में अपने भावों को समाहित करता है। इसके साथ ही कवि की भणिति भूत वर्तमान एवं भविष्य का सम्यक् रूपेण सौन्दर्य मण्डित वर्णन उपलब्ध रहता है। सत्य यह है कि निपुण कवि अतीत के जिस आख्यान को अपनी कृति का कथानक बनाता है। उसमें स्वाभाविकता सजीवता एवं पूर्णता लाने के लिए प्रयास करता है। परन्तु सत्य यह है कि कवि जिस समाज में रहता है उससे अश्वमेव प्रभावित होता है। यही कारण है कि काव्यानुशीलन से कवि एवं तत्कालीन जीवन विषयक प्रत्येक पक्ष यत्र–तत्र प्रतिबिम्बित होता हुआ दृष्टिगोचर होता है एवं किसी काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन परिस्थितियाँ एवं परम्परागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है।

आश्रम व्यवस्था–

भारतीय समाज में आश्रम–धर्म का विधान किया गया है। जीवन के मर्म को हृदयंगम करके ही आश्रम व्यवस्था को विकसित किया गया है। मनुष्य की आयु का समय सौ वर्ष मानते हुए इन सौ वर्षों को चार आश्रमों में समविभक्त किया गया है– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। महाभारत के अनुसार आश्रम व्यवस्था

रूपी चार पदों वाली सीढ़ी है जो ब्रह्म की ओर क्रमशः ले जाती है। जो इस सीढ़ी पर चढ़ने में समर्थ होकर चढ़ जाते हैं वह अन्त में ब्रह्मलोक अर्थात् मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं।

चतुष्पदी हि निः ब्रह्मण्येषा प्रतिष्ठता
एतामारुह निः श्रेणी ब्रह्मालोके महीयते।
ब्रह्माचारी ग्रहस्थश्च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुक।
यथोक्तचारिणः सर्वे गच्छति परमा गतिम्।।

ब्रह्मचर्य आश्रम में शिष्य गुरु के सानिध्य में रहकर संयम के साथ सद्गुणों को विकसित करता है। हरविजय महाकाव्य के सम्यक् अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि– तत्काल समय में आश्रम व्यवस्था का परिपालन पूर्णरूपेण किया जाता था।

हरविजय महाकाव्य का प्रारम्भ ही शिव और पार्वती के सुखमय जीवन से प्रारम्भ होता है–

यस्यांरतेषुपृथुपीननितम्बविम्ब,
शोभा स्फद्दशनपंक्तिकृशांगयष्टिः।।
कुर्मीव पुष्पधनुषः प्रियपाणिजाग्र–
कोणावमर्शमधुरक्वणितांगनासीत्।।[1]

दिवसावसन वर्णन[2], चन्द्रोदय वर्णन[3], गौरीश्वर देहार्ध वर्णन[4], समुद्रोल्लास वर्णन[5], प्रसाधन वर्णन[6], दूती संकल्प वर्णन[7], पान गोष्ठी वर्णन[8] में गृहस्थ जीवन के प्रायः समस्त सोपानों का विधिवत चित्रण हुआ है।

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में वानप्रस्थ आश्रम का अत्यधिक महत्व था ऋषि मुनि वनों में निवास करते थे। भगवान शिव अपनी शिवा के साथ वन में निवास करते थे।

गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम में जीवन व्यतीत करने के पश्चात मनुष्य मोक्ष प्राप्ति की लालसा करता है। हरविजय महाकाव्य में मोक्ष विषयक श्लोक प्रायः प्राप्त है।[9]

तत्वत्रयीकृतपदाष्टविभेद वर्ग,
निःशेषवांगमयनिबन्ध वर्ण राशिम्।

अन्यत्र प्रयुक्त अपवर्ग शब्द[10] इन्हीं भावों के द्योतक है। सन्यासी प्रायः ऊँकार में ही परब्रह्म के दर्शन करते हैं–

[1] हरविजय – 1/9
[2] हरविजय – 19 सर्ग
[3] हरविजय – 20 सर्ग
[4] हरविजय – 21 सर्ग
[5] हरविजय – 22 सर्ग
[6] हरविजय – 23 सर्ग
[7] हरविजय – 25 सर्ग
[8] हरविजय – 26 सर्ग
[9] हरविजय – 47/21, 29
[10] हरविजय – हरविजय 47/56, 58, 105, 106, 146

ऊँ तत्सर्दित्यमिततत्परमं तृतीय,
कायावमर्शगहनागमबोधिसंवित्।
आवेदवन्ध्यधृतिधूतधनानुपाशो
वागीश्वरो जननि स प्रणवो मुर्खते।[11]

हरविजय महाकाव्य में प्रयुक्त निर्वाण शब्द सन्यासियों के मोक्ष प्राप्ति का द्योतक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकवि राजानक रत्नाकर ने अपने हरविजय महाकाव्य में आश्रम चतुष्टय का सम्यक् रूपेण चित्रण किया है।

वर्ण व्यवस्था–

ऋग्वेद काल के ऋषियों की जाति प्रथा के सम्बन्ध मेंव विशेष परिज्ञान नहीं था समाज में विविध कार्यों की सविधि परिणति हेतु वर्ण व्यवस्था का विधान है। किन्तु वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के रूप में मनुष्य के विभाजन से अवश्य परिचित थे–

ब्रह्मणोऽस्य मुखमासीद मुखमासीद बाहुराजन्मः कृत।
उरु तदस्य यद् वैश्य पदभ्यो शूद्रो अजायत।।[12]

यजुर्वेद काल 100–800 ई0 पू0 में जाति प्रथा की सत्ता विद्यमान थी। महाभारत काल में ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के कर्तव्यों का बोध मिलता है।[13]

वैदिक वर्ण–व्यवस्था का आज की जाति प्रथा को जटिल बनाने का उत्तरदायित्व अवश्य देते हैं। अन्तःकरण की सरलता ज्ञान–विज्ञान और शास्त्रीय वचनों में विश्वास ये सभी ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

वर्ण चातुर्य अन्तिम वर्ण जो पुरुष के पाद प्रदेश से उत्पन्न हुआ है। उसे शूद्र की संज्ञा दी गयी है इसका कार्य प्रायः वर्णत्रयों की सेवा करना है। परन्तु उन्हें यदि कोई भी नाम व्यवसाय अनुसार दिया गया हो तो सेवक को शूद्र के रूप में ही स्वीकार किया गया है।

हरविजय महाकाव्य के अनुशीलन से परिज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी। हरविजय महाकाव्य में वर्णित प्रस्तुत श्लोक वर्णास्थिति की ओर संकेत करता है–

वर्ण स्थितिमतीमर्थ्या दधद्चिरभास्वराम्।
गिरं च पादपच्छायां श्रियश्च चतुरस्त्रताम्।।[14]

तत्कालीन समाज चार वर्णों में विभक्त था, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्णों के अनुसार कार्यों का विभाजन था समाज में ब्राह्मण का सर्वोच्च था। वह ज्ञान प्रदाता था। हरविजय महाकाव्य में अनेक स्थलों पर श्रुतियों और वेदों का वर्णन है जिसका ज्ञान ब्राह्मण ही देता था।

हरविजय महाकाव्य में अनेक स्थलों पर व्यापारिता शब्द[15] का प्रयोग है जिससे यह स्पष्ट होता जाता है कि वैश्यों का सम्बन्ध मुख्यतः व्यापार से है और तत्काल समय में व्यापार अधिक होता था।

शूद्रों का मुख्य कर्तव्य प्रायः अन्य वर्णों की सेवा सुश्रुषा करना था, किन्तु तत्काल में प्रयुक्त–

असावलम्बि शबलं मृगचर्म विभ्र–

[11] हरविजय – 47/92
[12] ऋग्वेद – 10/90/92
[13] भारतीय संस्कृति पृष्ठ संख्या–311
[14] हरविजय – 6/123, 17/35, 28/103
[15] हरविजय – 16/9, 5/88, 48/12, 44/29

दाकाशदेशमिव लग्नमुदंशुतारम्।।[16]

मृगचर्म शब्द से यह स्पष्ट होता है कि उस समय शूद्र चर्म कर्म किया करते थे। स्पष्ट है कि तत्काल में वर्ण व्यवस्था अति सुद्रढ़ थी। महाकवि राजानक रत्नाकर ने हरविजय महाकाव्य में इसका सम्यक् रूपेण वर्णन किया है।

अभिवादन–

धर्म ग्रन्थों में अभिवादन का विशेष महत्व है–

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोऽपि सेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विधा यशोबलम्।।[17]

आयु विद्या यश और बल की प्राप्ति के लिए अभिवादन और श्रेष्ठ जनों की सेवा अपरिहार्य है।

हरविजय महाकाव्य के प्रत्येक पात्र अनुशासित हैं। हरविजय महाकालीन समय में साष्यंग अभिवादन की प्रणाली प्रचलित थी–

प्राणिपत्य चैनमथ कांचनावनि
स्खलितोत्पतन्मधुमुक्तशेखरः।
अविदूरदेशनिहितानि भेजिरे,
तदनुज्ञया मणि शिला सनानि ते।।[18]

इसके साथ ही भगवत् स्तुति[19] वर्णन तथा चण्डी स्तोत्र[20] में की गयी स्तुतियां अभिवादन परक ही हैं–

अविशेषवृत्तिरहिमत्विषो यथा,
सकलेषु वस्तुषु विभा विजृम्भते।
तव नाथ निष्प्रतिद्यनिर्मलीमसस्थितिरस्तमोह,
तिमिरा मतिस्तथा।।[21]

महाकवि राजानक रत्नाकर कालीन समय में नतशिर होकर भी अभिवादन किया जाता था–

त्रिदश गणपतीं स्तान्विश्लथन्मौलिरत्न
प्रणतिनतशिरस्कान्संयुगे दृष्टभक्तीन्।
अभिमत वारलाभैः सोऽथ संभाव्य देव्या,
सह सुखमनुभावात्स्वां पुरीमध्यतिष्ठत्।।[22]

---

[16] हरविजय – 39/7, 20/56
[17] मनुस्मृति –
[18] हरविजय – 6/3
[19] हरविजय – 6 सर्ग
[20] हरविजय – 47 सर्ग
[21] हरविजय – 6/16
[22] हरविजय – 50/95

महाकवि राजानक रत्नाकर के समय में प्रायः लोग अभिवादन करके विनत भाव से ही अपनी बात प्रारम्भ करते थे–

सन्दर्शयन्नसकलेन्दुभृतो विदृक्षो
रित्यग्रतः प्रणतमौलिरसाववोचत्।।[23]

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् अध्ययन से यह पूर्णतयः स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज अत्यन्त शिष्ट, परिष्कृत एवं पूर्ण संस्कृति से युक्त था। सभी वर्ग अभिवादन के माहात्म्य एवं ज्ञान से पूर्ण हैं।

अतिथि सत्कार–

''अतिथि देवा भव''

भारतीय संस्कृति उद्घोषणा परम्परा में अतिथि का अति वैष्ठिय पूर्ण महत्व है। अतिथि सत्कार हमारीअपनी परम्पर है जिससे श्रेष्ठ जनों से अक्षुण्य तप आशीर्वाद के रूप प्राप्त होता है। कठोपनिषद् की कथावस्तु ही अतिथि सत्कार का आश्रयण है। हरविजय महाकाव्य में जिस समय भगवान शिपव के समीप अन्धक असुर से पीड़ित समुदाय पहुँचता है उस समय उनकी क्रियाएँ दृष्टव्य है–

इति समयमनैषत्तित्र तास्ताः स चेष्ठा
विदधदचलकन्याविप्रयोगानभिज्ञः।
सुरपतिभिरभक्ष्णं रत्नपट्टाघ्रिपीठाम्
लुठित मणिकिरीटाष्टापदैः सेव्यमानः।।[24]

प्रस्तुत श्लोक अतिथि सत्कार का ही द्योतक है।

अतिथि को सूचित स्थान देने की परम्परा का परिपालन अन्धक के द्वारा किया गया है।

वल्लभैर्मुदमधुर्दमधुर्य मनोहतः।।[25]

इस प्रकार हरविजय महाकाव्य का प्रत्येक पात्र और प्रकृति अवसरानुकूल प्रत्येक आगन्तुक का स्वागत करती है।

आशीर्वाद–

प्रत्येक जीव के हृदय में ब्रह्म का निवास है और अन्तःकरण से निःश्रीत प्रत्येक शब्द का अपना महत्व है इसलिए आशीर्वाद की प्राप्ति जीवन का महत्वपूर्ण क्षण है।

स्मृतियों एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण से जब हम व्यवहारिक पक्ष का अध्ययन करते हैं तो अभिवादन और आशीर्वाद का जीवन में अत्यधिक महत्व है। सामाजिक सृष्टता के साथ ही पारिवारिक सुदृढ़ता का बिम्ब परिलक्षित होता है तथा तत्कालीन सामाजिक अभ्युन्निति का प्रतीक स्वरूप संस्कृति का परिज्ञान होता है।

हरविजय महाकाव्य में आशीर्वचन का प्रारूप प्रायः इस प्रकार है–

[23] हरविजय – 39/3
[24] हरविजय – 2/64
[25] हरविजय – 3/7

आशीविषाः स्फरतिकेसररुपघोर–
जिहवा वहन्ति विकचेात्पलदामलीलाम्।।[26]

हरविजय महाकाव्य कालीन समय में प्रायः लोक आशीर्वादर स्मित वदन औनर गम्भीर गिरा से दिया करते थे–

अथतानुवाच दशनांशु –
निर्झरस्त्रपितोष्ठपल्लवमिंदजगत्पतिः।
नयनीरभार भर मन्थराम्बु–
दस्तनितातिडम्बरगभीरया गिरा।।[27]

हरविजय महाकाव्य में प्रायः आशीर्वाद स्वरूप कल्याणी गिरा से ही सिंचित किया करते हैं–

कल्याणी गुरमुत्रत्रस्टुं विरला एव जानते।
सत्यां रेखां विलिखितुं चित्रकर्म विदो यथा।[28]

सदाचार–

जीवन अपने वैज्ञानिक संविधानकों में संविभक्त है। सामाजिक, धार्मिक विधिविधानों का अपना पृथक वैशिष्ट्य है यही कारण है कि भारतीय जीवन जन्म से मृत्यु पर्यन्त विधिक संघटकों में सन्निबद्ध है। इन नियमों के आधार पनर जीवन के स्वास्थ्य का अनुभव करना ही सदाचार है। किरातार्जुनीयम् में महाकवि भारवि ने वैशिष्ट्यता को को विस्तारित करते हुए भारतीय मनीषा की सम्पूजा की है। भारतीय धृष्णा की है।

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् परिशीलन से ज्ञात होता है कि महाकवि राजानक रत्नाकर द्वारा वर्णित सदाचरण की सार्वभौमिकता अनुकरणीय है–

पर्यन्तवर्तिपरिपाण्डुरपत्रपक्ति–
पद्मासनासनकुशेशयकोषचक्रम।
युष्मान्षुनातु दषदुद्धतदुग्ध सिन्धु–
वीचिच्छटावलयितामरशैललीलाम्।[29]

मंगलाचरण–

प्राचीन काल से विध्नों के विनाश तथा मंगल भावों के आदान के लिए मंगलाचरण विधान होता आ रहा है–

विध्न विनाशाय मंगलाय च मंगलमाचरणीपम्

सूक्ति आज भी विद्वत्समाज में प्रचलित है। काव्य में नान्दी पाठ और भरतवाक्य इसी भावना के द्योतक हैं। साथ ही काव्य के मध्य में भी देव–देवी स्तुतियों में यही भावना प्रस्फुटित होती है।

महाकाव्य में मंगल भावना से ओत–प्रोत दृष्टव्य है यह श्लोक–

कण्ठश्रियं कुवलयस्तवकाभिराम

---

[26] हरविजय – 47/163
[27] हरविजय – 6/4
[28] हरविजय – 32/70
[29] हरविजय – 1/3

दामानुारिविकटच्छविकालकूटाम् ।
विभ्रत्सुखानि दिशतादुपहारपीत
धूपोत्थधूममलिनामिव धूर्जटिवः ।।[30]

इसी प्रकार शिव स्तुति[31] और चण्डीस्तोत्र[32] में मंगबलाचरणां का विधिवत् प्रयोग स्तुति परक शैली में किया गया है। हरविजय महाकाव्य में अनेक मांगलिक कार्य किये जाते रहे जो सौभाग्य सूचक होते रहे हैं।[33] पान गोष्ठी[34] और संभोग वर्णन[35] अनेक ऐसे स्थल हैं जो मंगलार्थ प्रतिपादक हैं जिनमें भौतिक जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार की मंगल कामनाएं की गयी हैं।

सम्मान–

देव द्विज नृप एवं अपने ज्ञान वृद्ध, वयो वृद्ध, अनुभाव वृद्ध व्यक्तियों का सम्मान करना अनिवार्य है अर्थात् भारतीय संस्कृति के अपरिहार्य है एतद्रिक्त मर्यादा का उल्लंघन और अव्यवहारिकता ही निदर्शना होगी जो भारतीय समाज के लिए दूषण है।

शास्त्रोक्त एवं व्यवहार विदुक्त जनों के द्वारा निर्धारित भारतीय सम्मान प्रक्रिया विश्व–विश्रुत तथा उपादेय है जो श्लाध्य है और ग्राहय भी–

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में सम्मान की पराकाष्ठा अति व्याप्त थी[36] अतः 15 वें सर्ग में सम्मान की विवेचना व्याप्त है।

कुटुम्ब माहात्म्य–

वैदिक काल से लेकर आज तक परिवार का अत्यधिक माहात्म्य रहा है। उस समय संयुक्त परिवार होते थे। परिवार का मुख्यिा पिता माना जाता था, अर्थात् पितृ प्रधान परिवार होते थे अतः पिता की आज्ञा ही सर्वमान्य थी। पुत्र–पुत्रियों के लिए उसे अलघ्य समझा जाता था। परिवार में एकता की भावना अत्यधिक व्याप्त थी ओर परिवार की श्रेष्ठता पारस्परिक समरसता में जिससे स्त्रियों की दशा परिवार में अति उच्च कोटि की सिद्ध हो गयी और वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना सर्वत्र व्याप्त थी।

हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में एकाकी परिवार अथवा विघटित परिवार का संकेत कहीं उपलब्ध नहीं होता और कुल तथा वृत पालन में लोगों की अटूट निष्ठा थी।

आबद्धक्रमहरिकम्प्यमानसाला सा
रामाभिगमसमाकुला तदानीम् ।
लंकेव स्फुटशुकसारणा वनोर्वी
वभ्राजे घनरुचिराक्षसानुविद्धा ।।[37]

पति–पत्नी सम्बन्ध –

---

[30] हरविजय – 1/1
[31] हरविजय – सर्ग 2 और 6
[32] हरविजय – सर्ग 47
[33] हरविजय – सर्ग 23, 39, 40
[34] हरविजय – सर्ग 26
[35] हरविजय – सर्ग 27
[36] हरविजय – 15 सर्ग
[37] हरविजय – 17/44

आदिकाल से ही पत्नी का महत्वपूर्ण स्थान है और उसे आदर तथा सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। ऋग्वेद का यह मंत्र इसी भावना का प्रतीक है–

सम्राज्ञी श्वश्रुरै भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।[38]

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी पति का आधा भाग है जब तक पति विवाहित नहीं होता और पुत्र नहीं उत्पन्न करता तब तक वह अपूर्ण रहता है।[39] वैदिक धारणानुसार गार्हपत्य जीवन के लिए पत्नी का अपेक्षित है।[40]

दृष्टव्य है महाकाव्य का यह श्लोक–

श्लिष्टोनयोः किमु भवेदुत नैव संधि
र्देहाध्वयोर्धटितयोरिति तत्परीक्षाम्।
आरिप्सु यस्य रभसादिव चक्षुरर्ध
नारीश्वरस्य निरियाय लटापट्टात्।।[41]

षोड्स संस्कार–

संस्कर, संस्कृति और संस्कृत तीनों का एक ही मूल है– संवारना शुद्ध करना।

संस्कारशब्द ही निष्पत्ति सम उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से धञ प्रत्यय करने से होती है। संस्कार का अर्थ है– धार्मिक, विधि, विधान, कृत्य जो आत्मिक सौन्दर्य के प्रतीक हो, संस्कार पद से शिक्षा, संस्कृति प्रशिक्षण, शुद्धि परिष्करण, आभूषण अर्थ भी ग्रहीत होते हैं।

आत्मशरीरान्यतरनिष्ठो विहितक्रियाजन्योऽतिशय विशेषः संस्कार।।

संस्कार शब्द का आगम यज्ञांगभूत पुरोऽाशदि की विधिवत् शुद्धि से–
प्रोश्रणादिजन्य संस्कारों यज्ञाग पुरोऽाशेस्वित दृष्यचर्म–

अद्वैत वेदान्ती जीव पर शारीरिक क्रियाओं में मिथ्या आरोप को संस्कार कहते हैं जिससे सविधि संस्कारों के अनुष्ठान से संस्कृत व्यक्ति में विचरण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

भारत वर्ष में संस्कार केवल हिन्दू धर्म के नहीं अपितु अन्य धर्म एवं सम्प्रदायों के महत्वपूर्ण अंग रहे हैं। विगत अनेक शताब्दियों से संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकता के प्रभावकारी माध्यम रहे हैं।

हिन्दू–संस्कारों का वर्णन भेदों के कुछ सूक्तों में कतिपय ब्राह्मण ग्रन्थों में गृहा धर्म सूत्रों में उपलब्ध होता है। गृहासूत्र साधारणतः विवाह में प्रारम्भ कर समावर्तन संस्कार पर्यन्त दैहिक संस्कारों का निरूपण करते हैं। गृहासूत्र में 12 पारस्कर बोधायन एवं वाराह ग्रहासूत्र में 13 वैखानस गृहासूत्र में 18 संस्कारों गौतम धर्म सूत्रों में 40 संस्कारों का निर्देश मिलता है।

इस धरा पर मानव का जन्म होना और संस्कारों का एक नया रूप है और मानव शरीर को संस्कारों से अविरित करता है। जन्म से मरण तक का संस्कार हमारे हिन्दू धर्म में है।

मनुस्मृति में 13 संस्कारों का माना याज्ञवल्क्यस्मृति में केशान्त छोड़कर मनुस्मृति के शेष 12 संस्कारों का विधान है।

---

[38] ऋग्वेद – 10/85, 46

[39] शतपथ – 2/2/1/10

[40] ऋग्वेद – 10/45/34, 5/3/2, 5/28/3

[41] हरविजय – 1/62

परवर्ती स्मृतियों में 16 संस्कारों का वर्णन है। जिन 16 संस्कारों का विशेष प्रचलन रहा है। यथा दृष्टव्य है 16 संस्कारों का वर्णन –

1– गर्भाधान संस्कार
2– पुंसवन संस्कार
3– सीमन्तोत्रयन संस्कार और यह तीन संस्कार जन्म से पूर्व ही किये जाते हैं।
4– जातकर्म संस्कार
5– नामकरण संस्कार
6– निष्क्रमण संस्कार
7– अन्नप्रशासन संस्कार
8– चूड़कर्म संस्कार
9– कर्णवेध संस्कार
10– विद्यारम्भ संस्कार
11– उपनयन संस्कार
12– वेदारम्भ संस्कार
13– केशान्त एवं गोदान संस्कार
14– समावर्तन संस्कार
15– विवाह संस्कार
16– अन्त्येष्टि संस्कार

दृष्टव्य है संस्कारों का वर्णन निम्न क्रमानुसार

1– जन्म से पूर्व संस्कार (प्रथम तीन)
2– बाल्यावस्था के संस्कार (4 से 9)
3– शैक्षणिक संस्कार (10 से 14 तक)
4– विवाह संस्कार (15)
5– अन्त्येष्टि (16)

संस्कारों का सर्वाधिक लोकप्रिय प्रयोजन तो मानवीय विकास की पूर्ति ही है। श्रेष्ठ संस्कारों का सद् आचरण से मानव शुभ एवं आचरण करता हुआ समस्त हिन्दू संस्कारों में इन अमंगल जनक तथ भूत–प्रेत पिशाचों के निराकरण के लिए नाना प्रकार की स्तुतियाँ एवं अनुष्ठान सदा से ही होते रहे हैं। इन विशेष अवसरों पर मनुष्य हर्ष शोक और दुःख आदि को भी व्यक्त करने के लिये इन संस्कारों का आयोजन कभी–कभी करते हैं। इन संस्कारों के गम्भीर सांस्कृतिक प्रयोजनों का भी विद्वानों ने निर्देश किया है।

मनुस्मृति के कथनानुसार –

जप–यज्ञ महायज्ञ आदि के वैदिक विधि विधानपूर्वक करने से मानव शरीर व्रहमीय हो जाता है।

स्वाध्यायेन वृतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राहनीयं क्रियते तनुः।।[42]

मानव शरीर स्थूल हो एवं सूक्ष्म शरीर की मानसिक व शारीरिक शुद्धि के लिए विधिवत क्रियाएँ की जाती हैं। ऋषियों और महर्षियों ने संस्कार नाम दिया है।

संस्कारों का उद्देश्य मनुष्य को अभ्युदय तथा माक्ष के लिए पूर्ण समर्थ बनाता है। संस्कार मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों का विकास कर उसे पूर्ण बनाते हैं। पारिवारिक जीवन में संस्कार का विशेष स्थान है। व्यक्ति के द्वारा प्रत्येक महत्वपूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है। इस प्रकार किये गये संस्कारों द्वारा जीवन का योग्य

[42] मनुस्मृति – 3/28

गुणपूर्ण परिष्कृत तथा व्यवस्थित स्वरूप प्राप्त होता था। वही व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना भी इनका उद्देश्य था। जिससे मानव मानवीय तथा अति मानवीय शक्तियों के अनुरूप अपने को निर्मित कर सके।

संस्कारों का विधान विकास और योजना इन सभी की पूर्ण रूप से यदि हृदयंगम किया जाये तो मानव का जीवन पूर्ण रूप से सुसंस्कृत बन सकता है। मानव मात्र के स्वास्थ्य आयु तथा अनुशासित जीवन के निर्माता भी संस्कार हिन्दू संस्कृति का चरित्र एवं नैतिकता का पूर्णतया विकास तथा पोषण होता है।

संस्कारों के प्रतिनिष्ठा की भावना अटूट होती है और मानवीय जीवन की आत्मवादी और भौतिक धारणाओं के बीच मध्य मार्ग का कार्य करते हैं। संस्कार एक प्रकार से आध्यात्मिक शिक्षा की क्रमिक सीढ़ियों का कार्य करते हैं। हिन्दु का विश्वास था कि संस्कारों के अनुष्ठानों से दैहिक बन्धनों से मुक्त होकर मृत्यु सागर को पा कर लेते हैं। न्यायिक भावों को व्यक्त करने की आत्मव्यंजक शक्ति को संस्कार कहते हैं–

सविधि संस्कारों के अनुष्टान से संस्कृति व्यक्ति को विलक्षण एवं अवर्णनीय गुणों का प्रादुर्भाव हो जाता है।

शास्त्रीय दृष्टि से संस्कार गृहसूत्रों की विषय–सीमा के अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं। संस्कार शब्द का प्रयोग उसके वास्तविक अर्थ में प्राप्त नहीं होता है। पंचम संस्कार तथा पाक संस्कार का उल्लेख करते हैं जिसका अभिप्राय है यज्ञ, भूमि का मार्जन अथवा शोधन।

संस्कार से भी शरीर पर आद्यान किया जा सकता है। प्रत्येक द्विज को स्थूल एवं सूक्ष्म शरीर की शुद्धि के लिए षोडश संस्कार करने चाहिए जिनसे इस लोक एवं परलोक में पवित्रता की प्राप्ति होती है।

भारतीय पुनर्जन्मवाद में आस्था रखकर एक भारतीय इस संस्कार को करता है। क्योंकि परलोक में सुख एवं कल्याण की शक्ति के लिए यह संस्कार आवश्यक माने गये हैं।

संस्कार व्यवहार में मानव जीवन के निर्माण व विकास की क्रमबद्ध योजना है ये संस्कार जीवन के परिस्कार एवं व्यक्तित्व के विकास में भी अपना योगदान करते हैं।

संस्कार शिक्षा दान का एक वैज्ञानिक प्रयोग है, महाभारत के प्रमुख पात्र अभिमन्यु ने अपनी माँ के पेट में चक्रव्यूह का ज्ञान एवं रचना प्राप्त कर लिया था। संस्कारों का ही क्रियान्वयीकरण होता है। निश्चय ही संस्कार मनुष्य को वास्तविक अर्थों में मानव बनाने का काया करते हैं।

हरविजय महाकाव्य में महाकवि राजानक रत्नाकर ने भी संस्कारों का वर्णन किया है–

प्रेखंत्फणामणिशिखारुणितोपवीत–
सूत्राधिकारभुजगः सदसीन्दुमौलेः।
निर्धौतधातुकपिलीकृतानिर्झराद्रि–
लीलां दधद्वचनमित्थमुदाजहार।।[43]

विवाह–

विवाह समस्त संस्कारों में गौरवशाली महत्वपूर्ण माना जाता है इस संस्कार द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् गृहस्थ आश्रम में प्रवेश होता है। यहाँ से व्यक्ति का समाजीकरण होकर उसके उत्तरदायित्व पूर्ण हो व्यक्तित्व का प्रारम्भ होता है। इसे एक यज्ञ का रूप मानकर ऐसा समझा जाता थ कि जो व्यक्ति विवाह करके गृहस्थ जीवन में प्रवेश नहीं करता वह अयज्ञिय अथवा यज्ञहीन कहा जाता था।

विवाह वैयक्तिक न होकर एक परिवारिक विषय था और वास्तव में उस समय वंश की अक्षुणता को बनाये रखने के लिए सन्तानोत्पत्ति करना ही विवाह का प्रमुख लक्षण था– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इसी संस्कार पर निर्भर करते थे।

विवाह शब्द का अर्थ व्युत्पत्ति की दृष्टि से ले जाना होता है उद्वहनम् नयनम् अर्थात् ले जाना। अतः विवाह का अर्थ–वधू को उसके पिता के घर से विशेष रूप में ले जाना विवाह के लिए उद्वाह परिणय, पाणिगृहण आदि शब्द भी प्रचलित थे अतः विवाह में पति–पत्नी के इस जन्म का ही नहीं अपितु जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध जुड़ जाता है।

[43] हरविजय – 16/3

विवाह के प्रकारों के सम्बन्ध लगभग सभी शास्त्रकारों ने आठ प्रकार के विवाह बताये हैं। जिनमें से प्रथम चार सभी वर्णों के लिए हितकारी, उत्तम और धर्मानुकूल है। शेष चार निम्न कोटि के माने गये हैं। ब्राह्मण वर्ण प्रथम 6 प्रकार के विवाह, क्षत्रिय वर्ण के लिए अन्तिम चार प्रकार के विवाह प्रशस्त माने गये हैं।

विवाह के प्रकार–

1– ब्रह्म विवाह
2– आर्ष विवाह
3– प्रजापत्य विवाह
4– आसुर विवाह
5– गान्धर्व विवाह
6– राक्षस विवाह
7– पैशाच विवाह

हरविजय महाकाव्य महाकवि राजानक रत्नाकर ने शिव और पार्वती के विवाह को संसूचित किया है।[44]

वेश–भूषा–

प्रगति की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए मानव ने अपने व्यक्तित्व को अधिकाधिक आकर्षक बनाने के लिए विविध वस्त्राभूषणों एवं श्रृंगार प्रसाधनों का निर्माण किया और कर रहा है।

वेशभूषा के द्वारा ही समाजिक सम्पन्नता का बोध होता है। भारतवर्ष में तो ऋतुओं के अनुकूल वस्त्र पहनने का विधान है। हेमन्त ऋतु में दुकूल की साड़ी और सूक्ष्म अंशुक का स्तन पर स्त्रियाँ नहीं धारण करती थीं।[45] शिशिर मं मोटे वस्त्रों को पहनने का उल्लेख है।[46] रात्रि और दिन के लिए वस्त्र अलग–अलग होते थे।[47] बसन्त में कुसुम्भी रंग की साड़िया पहनी जाती थीं।[48] जो वस्त्र सहजता से पहनने योग्य हों उन्हें सुवसन कहा जाता था।[49] धोती पहनने वाली कलात्मक शैली प्रचलित थी।[50] फटे वस्त्र पहनना चाहिए क्योंकि वस्त्रों के माध्यम से ही मनुष्य का सौजन्य दैदीप्यमान होता है।[51] शरीर के रंग के अनुरूप ही वस्त्र और आभूषण पहनने का विधान था।[52]

महाकवि राजानक रत्नाकर के समय में पट्टाशुंक का प्रयोग होता रहा है –

येनाभयं निर्जयनग्रमूर्तेर्विद्धेषिणः संयुकमूर्ध्नि दत्वा।
हराट्टहासच्छवि दिक्पुंरध्रीपटटाशुकं चारु यशो ग्रहीतम्।।[53]

तत्काल में लोग अधोवस्त्र और उत्तरीय धारण करते थे–

तार्क्ष्ये स्थितस्तत्कनकावदातपतत्ररश्मिच्छुरितोत्तरीयः।
सुरारिसेनादलितास्तदानीं चमूचरान्ज्ञस्वानथशाड़र्गपाणिः।।[54]

---

[44] हरविजय – प्रथम सर्ग
[45] ऋतु सं0 – 4/3
[46] ऋतु सं0 – 5/2
[47] ऋतु सं0 – 5/14
[48] ऋतु सं0 – 6/5
[49] ऋतु सं0 – 9/97/50
[50] चुल्लुवग्ग – 5/29/4
[51] चरक सूत्र – 5/92
[52] महापरिनित्वान सूक्त – 2/18
[53] हरविजय – 9/8

श्रृंगार–

भारत वर्ष में शरीर संस्कार करके उसे रमणीय बनाने की प्रथा आदि काल से ही प्रचलित है।[55] शरीर को स्नान्नादि द्वारा स्वच्छ रखना सुगन्धित पुष्पों का और चन्दन रस आदि का प्रयोग करना केश संवारना आदि प्रमुख
था।

हरविजय महाकाव्य में त्रयविंशति सर्ग में प्रसाधन की महत्त का वर्णन किया गया है।

जिससे तत्काल में स्त्रियां अधोलिखित प्रसाधनों से अपने को मण्डित कर प्रिय की प्रतीक्षा करती थी–

चण्डातक[56], पावक[57], कांची[58], चरकभरण[59], हार[60], वलय[61], अधरराग[62], ताम्बूल[63], पत्रलेखा[64], कर्णपूर[65], अंजन[66], कस्तूरिका तिलक[67] चतुला तिलक[68], केशवाश[69], अंगराग[70] प्रभृति[71]।

इन प्रसाधनों से हरविजय महाकाव्य कालीन समाज की प्रशासन प्रियता का ज्ञान होता है।

रत्न एवं आभूषण–

हरविजय महाकाव्य के सम्यक् परिशीलन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में प्रसाधन हेतु विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रचलन था। अनेक आभूषणों से स्त्री–पुरुष सुसज्जित रहते थे। तथा स्त्रियों का आभूषणों के प्रति विशेष अनुराग था स्त्रियाँ कट प्रान्त में सुन्दर मणिजटित करधानी भी धारण करती थीं।

एतद्र्थ हरविजय महाकाव्य में आभूषणों का विशेष महत्व प्रतिपादित किया गया। स्त्रियाँ आम्रचूड़ा[72] और रत्न चूड़ा पहना करती थीं।[73] पुरुष ताम्र चूड़ा पहनते थे।[74]

स्त्रियाँ कनक श्रृंखला को अत्यधिक अभिरुचि के साथ पहनती थी–

---

[54] हरविजय – 48 / 10
[55] हरविजय – 23 / 3
[56] हरविजय – 23 / 4
[57] हरविजय – 23 / 5
[58] हरविजय – 23 / 6
[59] हरविजय – 23 / 8, 10
[60] हरविजय – 23 / 13
[61] हरविजय – 23 / 15
[62] हरविजय – 23 / 15, 16
[63] हरविजय – 23 / 19, 20, 21
[64] हरविजय – 23 / 31
[65] हरविजय – 23 / 34
[66] हरविजय – 23 / 35
[67] हरविजय – 23 / 36
[68] हरविजय – 23 / 37 / 38
[69] हरविजय – 23 / 40, 43
[70] हरविजय – 1 / 11
[71] हरविजय – 1 / 12
[72] हरविजय – 47 / 55
[73] हरविजय – 48 / 4
[74] हरविजय – 47 / 55

ददर्शान्धकमाबद्धमध्यं कनकशृङखलैः।
नितम्बपरिवृत्रार्करश्मिरेखमिवाचलम्।।[75]
कांचन मेखला[76] **का भी तत्काल में प्रचलन था।**[77]
हरविजय महाकाव्य कालीन समाज में कुण्डवल[78] **और मणि कुण्डलों का प्रचलन था।**[79]

समाज में स्त्री सम्मान–

स्त्रियों की स्थिति किसी भी देश की सभ्यता का सच्चा मापदण्ड है। पाश्चात्य देशों के सर्वथा विपरीत भारत में पहले तो स्त्रियों की दशा परम समुन्नत थी। किन्तु शनैः शनैः अवनत हो गयी। यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवताः[80] की भावना ने नहि स्त्री स्वातंत्रयमर्हति में परिणत होकर गतिरेका पतिनार्याः का स्वरूप ग्रहण करते हुए नारी को दासी तुल्य बना दिया।

महाकवि राजानक रत्नाकर कृत हरविजय महाकाव्य में तत्कालीन समाज में स्त्रियों की महनीयता को उपवृंहित किया गया है।

सर्वप्रथम महाकाव्य में स्त्री की महनीयता एवं शालीनता का वर्णन किया गया है।

एतद्र्थ –

जरठपंकबीजसमत्विषो मधु निपातुमभिप्रजगल्भिरे
मधुलिहो विरहे कृतादिङखव्यवधयो वधयोकृतः स्त्रियः।।[81]

श्रृंगार भाव में भी स्त्रियों का भाव दर्शन तथा शारीरिक सौष्ठवोत्पन सौन्दर्य का अद्भुत वर्णन प्रस्तुत है–

स्पष्टप्रेंत्पक्ष्मशोभिरामैर्नेत्रैः।
स्त्रीणां दिक्षु कान्तिं किरदिः।
फुल्लन्नीलाभ्भोरुहैश्च स्त्रवन्त्याः
संघर्षेण व्यावहासीव तेने।।[82]

शारीरिक सौष्ठव–

शरीर आद्यं खलु धर्म साधनम् इस संसार में शरीर सर्वप्रिय है और इसका सौष्ठव शरीर का निधान है और परमावश्यक भी इसलिए शरीर सौष्ठव के प्रति प्रत्येक व्यक्ति को सजग रहना परमावश्यक है।

मेरे मतानुसार पुरुषार्थ चतुष्टम् को सम्पन्न करने का हेतु ही शारीरिक सौष्ठव है।

हरविजय महाकाव्य में दृष्टव्य है काव्य के विविध शारीरिक सौन्दर्य के विविध प्रसंगों के परिदृश्य–

कान्तिं रतान्तजनितां श्रत्थयन्ति यत्र
मषिक्पमन्दिरगवाक्षपथप्रविष्टाः।

---

[75] हरविजय – 32/56
[76] हरविजय – 5/71
[77] हरविजय – 21/40
[78] हरविजय – 32/49
[79] हरविजय – 31/40
[80] मनुस्मृति –
[81] रामा0 अयोध्याकाण्ड सर्ग – 24
[82] हरविजय – 18/61, 69, 40/15

अभ्यर्णवर्तिसुरनिर्झरिणीतरंग
भगानुसारशिशिरा मरुतोऽडनानाम्।।[83]

इसी प्रकार शरीर यष्टि का संविधानक दृष्टव्य है इन श्लोकों में–

तस्यास्तदा रुचिरचन्दनवारिपंक
चर्चाकृतामिव विधूसरतां प्रमार्ष्टुम्।
खेदाभ्भासि पूतिसमुन्नमितप्रहर्ष
रोमांचराजिनि ममज्ज शरीरयष्टिः।।[84]

मानवीय शारीरिक सौष्ठव एक महनीय उपलब्धि है और उसमें समरसता का संविधानक परमावश्यक है।

मैत्री भाव –

''सुख दुःख का साथी एवं जीवन का अभिन्न अंग है– मित्र''

इसीलिए सच्चा मित्र जीवन की अमूल्य उपलब्धि है इसी कारण इसकी आवश्यकता प्रतिपल प्रत्येक समाज में अपरिहार्य है।

हरविजय महाकाव्य भी इन्हीं भावों की सम्पुष्टि करता है प्रस्तुत श्लोक–

येऽध्यवात्सुरपि कांचनाचलम्
तेऽहितीव्रकटक व्रतीहिते।
प्रेम वभ्रुरिह सुभ्रुवां स्थिता हे मतार्य पटुचर्य तामहे।।[85]

उपसंहार–

प्राचीनकाल से ही वर्ण व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था आदि सामाजिक मान्यातायें भारतीय संस्कृति एवं हिन्दू समाज के संगठन का एक प्रमुख आधार रही है इस व्यवस्था के अर्न्तगत समाज को चार वर्गो में विभक्त किया गया। भारतीय समाज में आश्रम व्यवस्था, वर्ण व्यवस्था, आर्शीवाद, अतिथि सत्कार, सदाचार, विवाह, समाज में स्त्री सम्मान आदि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए किसी काव्य का सामाजिक अध्ययन करते समय उसमें वर्णित तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियॉ एवं परंपरागत मान्यताओं का निरूपण आवश्यक है। हरविजय महाकाव्य में चित्रित सामाजिक मान्यताएँ इस तथ्य को चरितार्थ करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. हरविजय – 19 सर्ग
2. हरविजय – 20 सर्ग
3. हरविजय – 21 सर्ग
4. हरविजय – 22 सर्ग
5. हरविजय – 23 सर्ग
6. हरविजय – 25 सर्ग
7. हरविजय – 26 सर्ग
8. हरविजय – 47/21, 29
9. हरविजय – हरविजय 47/56, 58, 105, 106, 146

[83] हरविजय – 1/11
[84] हरविजय – 25/64
[85] हरविजय – 5/92

10. हरविजय – 47/92
11. ऋग्वेद – 10/90/92
12. भारतीय संस्कृति पृष्ठ संख्या–311
13. हरविजय – 6/123, 17/35, 28/103
14. हरविजय – 16/9, 5/88, 48/12, 44/29
15. हरविजय – 39/7, 20/56
16. मनुस्मृति
17. हरविजय – 6/3
18. हरविजय – 6 सर्ग
19. हरविजय – 47 सर्ग
20. हरविजय – 6/16
21. हरविजय – 50/95
22. हरविजय – 39/3
23. हरविजय – 2/64
24. हरविजय – 3/7
25. हरविजय – 47/163
26. हरविजय – 6/4
27. हरविजय – 32/70
28. हरविजय – 1/3
29. हरविजय – 1/1
30. हरविजय – सर्ग 2 और 6
31. हरविजय – सर्ग 47
32. हरविजय – सर्ग 23, 39, 40
33. हरविजय – सर्ग 26
34. हरविजय – सर्ग 27
35. हरविजय – 15 सर्ग
36. हरविजय – 17/44
37. ऋग्वेद – 10/85, 46
38. शतपथ – 2/2/1/10
39. ऋग्वेद – 10/45/34, 5/3/2, 5/28/3
40. हरविजय – 1/62
41. मनुस्मृति – 3/28
42. हरविजय – 16/3
43. हरविजय – प्रथम सर्ग
44. ऋतु सं0 – 4/3
45. ऋतु सं0 – 5/2
46. ऋतु सं0 – 5/14
47. ऋतु सं0 – 6/5
48. ऋतु सं0 – 9/97/50
49. चुल्लुवग्ग – 5/29/4
50. चरक सूत्र – 5/92
51. महापरिनित्वान सूक्त – 2/18
52. हरविजय – 9/8
53. हरविजय – 48/10

54. हरविजय – 23/3
55. हरविजय – 23/4
56. हरविजय – 23/5
57. हरविजय – 23/6
58. हरविजय – 23/8, 10
59. हरविजय – 23/13
60. हरविजय – 23/15
61. हरविजय – 23/15, 16
62. हरविजय – 23/19, 20, 21
63. हरविजय – 23/31
64. हरविजय – 23/34
65. हरविजय – 23/35
66. हरविजय – 23/36
67. हरविजय – 23/37/38
68. हरविजय – 23/40, 43
69. हरविजय – 1/11
70. हरविजय – 1/12
71. हरविजय – 47/55
72. हरविजय – 48/4
73. हरविजय – 47/55
74. हरविजय – 32/56
75. हरविजय – 5/71
76. हरविजय – 21/40
77. हरविजय – 32/49
78. हरविजय – 31/40
79. मनुस्मृति –
80. रामा0 अयोध्याकाण्ड सर्ग – 24
81. हरविजय – 18/61, 69, 40/15
82. हरविजय – 1/11
83. हरविजय – 25/64
84. हरविजय – 5/92

डॉ. रेनू शुक्ला
असिस्टेण्ट प्रोफेसर, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय, करगीरोड, कोटा, बिलासपुर, छत्तीसगढ़।